THE RESEARCH DIALOGUE
An Online Quarterly Multi-Disciplinary
Peer-Reviewed / Refereed Research Journal
ISSN: 2583-438X
© The Research Dialogue | Volume-05 | Issue-01 | April-2026
Available online at: https://theresearchdialogue.com/
DOI : https://doi.org/10.64880/theresearchdialogue.v5i1.19

समकालीन पारिवारिक संस्कृति और सामाजिक यथार्थ का प्रामाणिक चित्रण : टूटने के बाद

अच्युत शुक्ला[1] एवं प्रोफेसर जय शंकर तिवारी[2]

[1]शोधार्थी, डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या एवं सहायक आचार्य, श्री लाल बहादुर शास्त्री डिग्री कॉलेज, गोंडा

[2]शोध निर्देशक एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री डिग्री कॉलेज, गोण्डा

[1]ईमेल – achyut8795@gmail.com, [2] ईमेल – jstiwarihindi1974@gmail.com

सार

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में सांस्कृतिक बदलाव की एक ऐसी धारा बही जिसमें कि श्लीलता और अश्लीलता की नयी परिभाषाएँ गढ़ी गईं। एक लंबे अरसे तक हमारी संस्कृति जिसे उचित मानती रही पश्चिमी संस्कृति ने उसे गलत ठहराया और अनुचित की वकालत की। सामाजिक संरचनाओं में जड़ों तक गहरे पारम्परिक मूल्यों पर कुठाराघात हुआ और वे ढह गए, नए मूल्यों की स्थापना हुई – जो क्रोड में- स्वच्छंदता और उच्छृंखलता को प्रश्रय देने वाले सिद्ध हुए। उपन्यास में बदलते जीवन मूल्यों और बदलती संस्कृति को अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है। भारतीय संस्कृति में स्त्री का स्थान तो अत्यंत उच्च माना ही गया है, साथ ही खान-पान में निरामिष भोजन और मदिरा निषेध का भी उचित स्थान रहा है। इधर 21वीं सदी में स्त्रियों ने स्वच्छंदता और स्वतंत्रता के नाम पर जिस उच्छृंखलता को प्रश्रय दिया, यह सोचनीय है। युवा पुरुष मादक एवं नशीले द्रव्यों के सेवन में संलिप्त हैं और इसमें स्त्रियाँ भी पीछे नहीं।

बीज शब्द – 21वीं सदी, सांस्कृतिक बदलाव, मूल्य, भारतीय संस्कृति, बिखराव

21वीं सदी में सर्वाधिक बदलाव पारिवारिक ढाँचे और सामाजिक संरचनाओं में देखने को मिले। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में सांस्कृतिक बदलाव की एक ऐसी धारा बही जिसमें कि श्लीलता और अश्लीलता की नयी परिभाषाएँ गढ़ी गईं। एक लंबे अरसे तक हमारी संस्कृति जिसे उचित मानती रही पश्चिमी संस्कृति ने उसे गलत ठहराया और अनुचित की वकालत की। सामाजिक संरचनाओं में जड़ों तक गहरे पारम्परिक मूल्यों पर कुठाराघात हुआ और वे ढह गए, नए मूल्यों की स्थापना हुई – जो क्रोड में- स्वच्छंदता और

उच्छृंखलता को प्रश्रय देने वाले सिद्ध हुए। पारिवारिक ढाँचा टूटा – संयुक्त से एकल और उस एकल परिवार के सदस्यों में टूटन सामने आई। संजय कुंदन द्वारा 2009 ई. में लिखित टूटने के बाद व्यापक सामाजिक संवेदनाओं को निकष पर कसने वाला उपन्यास है। परिवार के ही दो भाइयों की नैतिकता – अनैतिकता पर्याप्त भिन्न है। उपन्यास के केंद्र में विमला त्रिपाठी और रमेश त्रिपाठी का पुत्र अप्पू है, जो पारिवारिक रूप से हाशियाकृत है (क्योंकि माँ-बाप दोनों सेवारत हैं, अलग-अलग रहते हैं); जिस वजह से अप्पू पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है।

विमला और रमेश का एक पुत्र अभय भी है जो अप्पू से बिलकुल अलग है। अप्पू दिल्ली के मयूर विहार इलाके में रहता है, उसकी माँ पटना में नौकरी करती है और वहीं रहती है साथ ही उसके पिता काम से अधिकतर बाहर ही रहते हैं। अनिरुद्ध बाबू जोकि रमेशजी के मित्र हैं वे अप्पू की सोसायटी के पास ही रहते हैं, और नित्यप्रति केवल अप्पू के पास इसलिए जाते हैं जिससे यह जान सकें कि वह जीवित है भी या नहीं। उपन्यास की शुरुआत में रमेश जी के परिवार के विषय में लम्बी कहानी है कि कैसे उनके पिता जो गाँव डमरूगंज के शिव मंदिर के पुजारी थे, से उनका उत्थान हुआ। और अब उन्होनें उन्नति का रास्ता एक बार देखा तो कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। पर इस भागदौड़ में पीछे रह गया – अप्पू, जिसको शायद माँ – बाप का प्यार कभी नहीं मिल पाया। उपन्यास के आरम्भ में अप्पू घर छोड़कर बाहर निकला है – शायद खुदखुशी के लिए। पर वह कहाँ जाए। वह शुरुआत से ही दुनिया से इतना कटा हुआ है कि उसको दुनियावी जीवन जीने की कला नहीं आती। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ है। उसका संसार तो केवल माँ-बाप और बड़ा भाई ही रहे। उन्होंने जितना कहा, उसने उतना ही किया। अपनी ओर से सोचा भी कुछ नहीं। अब जब वह जिन्दगी के थपेड़ों का सामना कर रहा है तो ऐसा लगता है कि वह जीवन से हार चुका है –

"घर गया अप्पू। सोचा तो था कि आज लौटकर नहीं आएगा पर...। लेकिन वह जाए तो जाए कहाँ? अभी तक वह अपनी दुनिया खोज नहीं पाया था। वह अपने माँ-बाप और भाई के संसार से निकलकर किधर का रुख करे? वह कई बार उनसे घृणा कर बैठता था। पर उनके बगैर अपने जीवन की कल्पना करके घबरा भी जाता था। आखिर उनकी जगह कौन ले सकता है?"

अभय जहाँ एक ओर दुनियावी बातों में अपने को ढाल लेने वाला लड़का है, वहीं अप्पू में यह समझ शायद विकसित ही नहीं हो पायी। अभय जहाँ ड्रिंक्स, गर्लफ्रेंड, सेक्स इत्यादि से कोई दूरी नहीं रखता, वहीं अप्पू को यह सब बातें उसके मन में छिपे किसी भ्रम को जागृत कर देती हैं। 21वीं सदी में नई पीढ़ी बिना कुछ सोचे-समझे हर कार्य करती है, बगैर परिणामों की परवाह किए, हालांकि इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि यदि उसे ये परिणाम पता भी है तो क्या यह पीढ़ी वह काम नहीं करेगी। यह पीढ़ी यौनाचार के मामले में स्वच्छंद है, एक दूसरे की नग्न तस्वीरें भी आपस में साझा करते हैं। अभय जब अप्पू को यह दिखाता है तो अप्पू आवाक् रह जाता है। अभय कहता है –

"देखो अप्पू सेक्स मेरे लिए इनपुट की तरह है। मैंने यह इनपुट जितना डाला मेरा रिजल्ट उतना ही अच्छा हुआ। पढ़ाई के लिए यह एक तरह का टॉनिक है।.. तुम भी कोई गर्लफ्रेंड जल्दी से बनाओ।"

और परिवार में माँ-बाप को भी अपने बड़े लड़के पर गर्व है, क्योंकि वह दब्बू नहीं है, दुनियादारी जानता है –

"पापा ने एक-दो मेहमानों से अभय का परिचय कराते हुए गर्व के साथ कहा था, यह मेरा बेटा है। अगले हफ्ते अमेरिका जाने वाला है। लेकिन वहीं बगल में अप्पू भी खड़ा था पर पापा ने उसका परिचय नहीं कराया। शायद इसलिए कि उसके बारे में कहने को कुछ खास नहीं था। (उन्हें खास लोग ही पसंद थे)।"

एक ओर जहाँ अप्पू का बड़ा भाई अभय दुनिया के तिकड़मों को जानता – समझता है, वहीं दूसरी ओर उसके पिता रमेश भी इन्हीं तिकड़मों के सहारे काफी ऊँचे तक उठे हैं। ठीक भी तो है, सीधे वृक्ष जल्दी काट दिए जाते हैं जबकि टेढ़ों को कोई नहीं छूता। तुलसीदास भी कहते हैं कि – टेढ़ जानि शंका सब काहु, वक्र चंद्रमहि ग्रसई न राहु।

वर्तमान युग ऐसा ही बन पड़ा है। कार्यालयों में भरा परड़ा भ्रष्टाचार, नीतियों में लूपहोल, लालफीताशाही, अपराध, अनैतिक कार्यों और संबंधों के इस समाज में सामाजिक मर्यादाएँ विखंडित हो चलीं और सामाजिक आदर्श थोथे हो गए। ऐसे विपरीत समय में सीधी चाल चलने वालों की कोई पूछ नहीं, आवश्यकता है तो टेढ़ी चाल वालों की। रमेश जी भी ऐसे ही हैं –

"अफसरों या मन्त्री के सामने कोई प्रोजेक्ट प्रस्तुत करते हुए वह दो बातों पर अवश्य जोर देते थे। एक तो वह सरकार और सामाजिक संस्थाओं की आपसी भागीदारी को बहुत महत्त्वपूर्ण बताते थे और दूसरे वह ग्लोबलाइजेशन तथा उदारीकरण का गुणगान करते थे।"

वैसे रमेश जी है तो जन्म से ब्राह्मण पर कर्म उन्होनें कोई बकाया नहीं रखे – आमलेट, मांस, सिगरेट – यह सब तो करना ही पड़ता है, बड़े अफसरों के साथ न तो किया ही नहीं जा सकता है। दोनो बच्चों – अभय और अप्पू पर उनका कोई विशेष ध्यान नहीं है। या यूँ कहें कि अभय और अप्पू दोनों उनके हाथ में नहीं है। अभय ने जीवन का कोई अनुभव बाकी नहीं छोड़ा और अप्पू कोरा अनुभवहीन है। रमेश जी ने सारे जीवन बस एक ही बात सीखी-

"जीवन के पिछले कुछ वर्षों के अनुभव से उनकी यह धारणा मजबूत हो गयी थी कि बगैर पैसे के जीवन में कुछ भी सम्भव नहीं है। पैसा है तभी इज्जत है।"

और शायद अपनी सरकारी नौकरी को उन्होंने छोड़ा भी इसलिए था कि वे अपने जीवन में अकूत पैसा कमा सकें – भले ही इसके लिए उन्हें संबंधों की कुर्बानी देनी पड़े। यही सब फैसले लेकर वह दिल्ली चले आते हैं – राजनीतिक सत्ता और नौकरशाही में हाथ आजमाने। अपने परिवार को पीछे, पटना छोड़कर, और जब दिल्ली आते हैं तो पाते हैं –

"उन्हें लगा जैसे वह शिकारियों की जमात में चले आए हैं। यहाँ एक से बढ़कर एक शिकारी थे, कोई छोटे तो कोई बड़े। शिकार करने के ऐसे-ऐसे ढंग थे कि रमेश जी दंग रह जाते थे। कोई यहाँ धूल से पैसा निकालने की फिराक में था तो कोई धूप से, तो कोई हवा से पैसे बनाने की जुगत भिड़ा रहा था।"

और यहाँ पैसे कमाने के तरीके भी भिन्न-भिन्न थे। ये लोग अथाह दौलत और जिंदगी की रंगीनियों के सपने में खोए रहते थे। ये अतिलोभी, पैसे के अति लोलुप व्यक्ति थे। साथ ही सरकार में बैठे लोगों के पास भी धनार्जन के अलहदा तरीके थे –

"दिल्ली के कई मंत्रियों और नौकरशाहों ने अपने-अपने एनजीओ बना रखे जिसका कामकाज आमतौर पर उनकी पत्नियाँ सँभालती थीं। किसी ने अध्ययन और शोध के लिए संस्था बना रखी थी तो कोई बेसहारा बच्चों के लिए काम कर रहा था। इन संस्थाओं को भारत सरकार के साथ विदेशी संस्थाओं से खूब पैसा मिलता था। लोगों का कहना था कि यह ऊपरी कमाई करने का एक वैधानिक और सम्मानित तरीका है।"

लेकिन अप्पू को हमेशा अपने माँ-बाप पर दया आती। उसके पिता उसको कमजोर और असहाय लगते। बड़े-बड़े अधिकारियों के हर छोटे-बड़े काम को करने में उसके पापा यानि कि रमेश जी दिन-रात एक कर देते क्योंकि अधिकारी प्रसन्न तभी तो उनका घर-परिवार चलेगा पर अप्पू किसी बंधन में अपनी जिंदगी नहीं बिताना चाहता। उसके पापा हर वक्त दुहाई देते कि मैनें बड़ी मुश्किल से यह सब हासिल किया – यह सोफा, कम्प्यूटर, होम थियेटर और एसी वगैरह। पर इसकी भी कुछ कीमत थी। अप्पू को अपने पापा के लिए लगता –

"क्या इसी तरह वह हमेशा दूसरों की इच्छाएँ पूरी करने के लिए अपनी आकांक्षाओँ की बलि चढ़ाते रहे हैं? यह तो खुद को गिरवी रखने जैसा हुआ। नहीं! अप्पू को यह जिन्दगी पसन्द नहीं। यह क्या मतलब है कि कोई हमारे निजी पलों पर धावा बोल दे और हम उसके बन्धक बनकर रह जाएँ।"

अप्पू अगर बन्धक न बने तो क्या करे? उसे अपने जीवन के उद्देश्य की तलाश है। उसके पापा स्वयं दोहरी जिन्दगी जीते हैं और दूसरों से भी अपेक्षा रखते हैं – अप्पू से भी पर अप्पू को यह नहीं पसन्द और शायद इसी वजह से –

"अप्पू को यह दोहरी जिन्दगी पसंद नहीं। ऐसा क्यों होता है कि आदमी कहता कुछ और है लेकिन करता कुछ और है। पापा कहते हैं कि वह समाज को बदलने के लिए काम कर रहे हैं। वे गरीबों की जिन्दगी सुधारना चाहते हैं लेकिन यह सच नहीं है। सच तो यह है कि वह अधिक से अधिक पैसा कमाना चाहते हैं। स्टेटस हासिल करना चाहते हैं।"

अप्पू अपने पापा की तरह नहीं बनना चाहता, वह कुछ अलग करना चाहता है। क्या? यह उसे खुद नहीं पता। वह इंटरनेट की मदद लेता है। आज के युग में इंटरनेट पर सब कुछ मौजूद है। इंटरनेट पर वह रास्ते की तलाश में लगा, शायद वहाँ से जीने का कोई उद्देश्य मिले। न जाने कितनी वेबसाइटों को उसने देखा पर अन्त तक उसे जीने का कोई मतलब नहीं मिला- सारी दुनिया फरेब और जालसाजी की ही जिंदगी व्यतीत कर रही है क्या? आज के युग में इंटरनेट का बोलबाला है, उपन्यासकार इस तथ्य को बेहद बखूबी से जानता है, इसीलिए उसने उपन्यास में अप्पू के माध्यम से स्पष्टता से अंकित भी किया है कि –

"इंटरनेट पर हर सवाल का जवाब मौजूद था। तरह-तरह के विज्ञापन थे, तरह-तरह के दावे थे। कोई कह रहा था – जीना है तो कोई मकसद खोजो, कोई कह रहा था योग की शरण में जाओ। कोई कह रहा था दोस्त बनाओ। जीने की कला पर लिखी गई अनेक कितों का प्रचार था।" अप्पू जीने का मकसद ढूँढना चाहता था, वह अपने अंतर्मन की आवाज को सुनना चाहता था, वह शहर के शोरगुल से कोसों दूर हो जाना चाहता था, लेकिन वह दिल्ली में रहता था, जहाँ लोग बाग एक दूसरे को नहीं जान रहे हैं, हर कोई निरुद्देश्य बस चलता ही चला जा रहा है –

"ओह! कितना कठिन है दिल्ली की सड़कों पर पैदल चल पाना। हर वक्त कोई न कोई गाड़ी आती ही रहती है शोर मचाती हुई। चेतावनी देती हुई, धौंस जमाती हुई। अप्पू शान्ति चाहता था जहाँ शोर न हो, भीड़ न हो।"

उपन्यास में बदलते जीवन मूल्यों और बदलती संस्कृति को अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है। भारतीय संस्कृति में स्त्री का स्थान तो अत्यंत उच्च माना ही गया है, साथ ही खान-पान में निरामिष भोजन और मदिरा निषेध का भी उचित स्थान रहा है। इधर 21वीं सदी में स्त्रियों ने स्वच्छंदता और स्वतंत्रता के नाम पर जिस उच्छृंखलता को प्रश्रय दिया, यह सोचनीय है। युवा पुरुष मादक एवं नशीले द्रव्यों के सेवन में संलिप्त हैं और इसमें स्त्रियाँ भी पीछे नहीं। रमेश और विमला का बड़ा सुपुत्र अभय एक विधवा अत्याधुनिक लड़की रीटा से शादी बिना अपने माँ-बाप की इच्छा से करने जा रहा है क्योंकि वह एक बड़े व्यवसायी की पुत्री है और अभय को अपना भविष्य उसके साथ चमकीला नजर आ रहा है। आज चहुँओर अर्थसंस्कृति का ही बोलबाला है। रमेश जी ने भी यही किया, अभय भी उन्हीं के पदचिह्नों पर चल रहा है। इसके चलते यदि परिवार टूटता है तो वह भी स्वीकार्य है। बहरहाल, उपन्यास के एक संवाद जो अभय और अप्पू के मध्य है, उससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्री-स्वातंत्र्य किस तरह से उच्छृंखलता में रूपांतरित होता चला जा रहा है

"नाश्ते के बाद अभय ने अप्पू को एक सोशल नेटवर्किंग साइट खोलकर दिखायी जिस पर रीटा की तस्वीरें थीं। यह देखकर अप्पू घबरा गया। उनमें ज्यादातर में रीटा शराब पीने के बाद अस्त-व्यस्त हालत में दिखाई दे रही थी। एक में तो उसके कपड़े अस्त-व्यस्त थे। एक तस्वीर देखकर तो अप्पू के होश उड़ गए। उसमें रीटा कमोड पर बैठी हुई थी।

'यह क्या है भइया' अप्पू ने पूछा।

'बस है। आजकल लड़कियाँ अपनी फोटो इसी तरह साइट्स पर डालती हैं।'

'लेकिन क्यों?'

'अब इसके पीछे साइकॉलजी यही है कि हम किसी से कम नहीं। जब मर्द शराब पीकर हुल्लड़-हंगामा कर सकते हैं तो महिलाएँ क्यों नहीं।'

'लेकिन इससे क्या मिलने वाला है?'

'यह सब मॉडर्न लाइफ का एक पार्ट है। हमें यह सब स्वीकार करना होगा।"

रमेश जी दिल्ली जाकर बड़े आदमी हो गए हैं। इधर उनका बड़ा लड़का अभय जब विधवा स्त्री से विवाह कर रहा है तो वह केवल साख बचाने हेतु गांव के मंदिर का पुनर्निमाण कराने में संलग्न हो जाते हैं। और गाँव जाने पर भी केवल बड़े लोगों से ही सम्बन्ध रख रहे हैं। यह उनका बिखराव है, मनुष्यता का बिखराव है, संबंधों का टूटना है –

"वह गाँव से जुड़े हुए हैं लेकिन जमीन से कट गए हैं। मतलब यह कि उ जिस तरह के आदमी थे वह अब नहीं रह गये हैं। उनको त्रिवेणी सिंह के खानदान से मतलब है शशिभूषण पांडेय से मतलब है बुलाकी मिसिर से मतलब है लेकिन हमलोग से नहीं अपने गोतिया लोग से नहीं क्योंकि हम लोग गरीब हैं।"

लेकिन क्या केवल रमेश जी ही बदले? गाँव नहीं बदला ? गाँव के लोग नहीं बदले ? गाँवों में बैठक का स्वरूप कैसे परिवर्तित हुआ, एक बानगी देखिए –

"अब भांग का चलन खत्म हो गया था। अब त्रिलोकी सिंह के घर से चाय बनकर आती थी। आज की तरह विशेष मौकों पर प्लेट में नमकीन भी रहती थी। पहले लोग चौकी पर बैठते थे लेकिन अब बेंत की कई कुर्सियाँ आ गयी थीं। एक सेंटर टेबल भी रखी गयी थी। रमेश जी के अलावा एक-दो और लोग मोबाइल लेकर बैठे हुए थे।"

निष्कर्ष – सब कुछ बदल रहा है, कुछ भी पहले जैसा नहीं, सब अस्थिर, गत्यात्मक। हर व्यक्ति की अपनी एक अलग दुनिया और वह उसी दुनिया में मशगूल – यह है आज का यथार्थ और इसी का प्रामाणिक चिंतन और अंकन करता हुआ उपन्यास है – टूटने के बाद। रमेश और विमला तथा उनके दो बेटे – अभय और अप्पू, चार लोग लेकिन चारों की दुनिया अलग – रमेश स्वर्णमृग के पीछे अंधी दौड़ में, विमला अपने मायके के मामलों में, अभय और अधिक यश, अर्थ की स्पृहा रखने वाला और अप्पू? अप्पू जो बचपन से इन लोगों के कहे अनुसार चला है वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ है, वह अलग-थलग पड़ चुका है, अकेला है। यही शायद आज की दुनिया का वास्तविक सत्य भी है। उपन्यास भाषाई स्तर पर तो करीने से बुना ही गया है साथ ही लेखक की किस्सागोई उपन्यास में चार चाँद लगाने का कार्य करती है।

संदर्भ:

- कुंदन, संजय, टूटने के बाद, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, दूसरा सं. 2011, पृ.सं. 14
- वही, पृ.सं. 20
- वही, पृ.सं. 20
- वही, पृ. सं. 23
- वही, पृ.सं. 28
- वही, पृ.सं.30
- वही, पृ.सं. 31-32
- वही, पृ.सं. 49
- वही, पृ.सं. 51
- वही, पृ.सं. 50
- वही, पृ.सं. 60
- वही, पृ.स. 73

- वही, पृ.सं. 84
- वही, पृ.सं. 86

Cite this Article:
शुक्ला,अच्युत एवं तिवारी, प्रोफेसर जय शंकर ,“ समकालीन पारिवारिक संस्कृति और सामाजिक यथार्थ का प्रामाणिक चित्रण : टूटने के बाद” The Research Dialogue, Open Access Peer-reviewed & Refereed Journal, Pp-158–164,Volume-05, Issue-01, April-2026, https://theresearchdialogue.com/

This is an Open cess Journal / article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution License CC BY-NC-ND 3.0) which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited. All rights reserved.

CERTIFICATE

of Publication

This Certificate is proudly presented to

अच्युत शुक्ला एवं प्रोफेसर जय शंकर तिवारी

For publication of Research Paper title

समकालीन पारिवारिक संस्कृति और सामाजिक यथार्थ का प्रामाणिक चित्रण : टूटने के बाद

Published in 'The Research Dialogue' Peer-Reviewed / Refereed Research Journal and E-ISSN: 2583-438X, Volume-05, Issue-01, Month April, Year-2026, Impact Factor (RPRI-4.73)

Dr. Lohans Kumar Kalyani
Editor- In-chief

Dr. Neeraj Yadav
Executive-In-Chief- Editor

Note: This E-Certificate is valid with published paper and the paper must be available online at: https://theresearchdialogue.com/

DOI : https://doi.org/10.64880/theresearchdialogue.v5i1.19